Shodhshauryam, International Scientific Refereed Research Journal
© 2018 SHISRRJ | Volume 1 | Issue 3 | ISSN : 2581- 6306

संस्कृत वाङ्मय में राष्ट्रीय चेतना की परिकल्पना

डॉ. अश्विनी कुमार
"भूतपूर्व शोधच्छात्र"
संस्कृतविभाग, कलासंकाय
काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी उत्तर प्रदेश, भारत।

सारांश- राष्ट्रीय चेतना की परिकल्पना के विषय में कुछ विद्वानों का मानना है कि इस उद्भावना का विकास विदेशी आक्रान्ताओं के आने के तत्पश्चात् ही जागृत हुआ, किन्तु आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी ने इस कथन का खण्डन करते हुए कहते हैं कि "जो भी लोग पश्चिम की नवीन जागृति चेतना से चकित होकर भारत को उस विदेशियों का अनुयायी बनाना चाहते हैं, वे न तो अपनी राष्ट्रीय सत्ता का मर्म समझ पाते हैं और न ही राष्ट्र की वर्तमान नाड़ी गति का ज्ञान रखते हैं। उनकी इस प्रकार सोची हुई राष्ट्रीय भावना अविकसित और बहुत ही निर्जीव प्रतीत होती है।" हमारे देश में राष्ट्रीय चेतना का विकास आदिकाल से ही ऋषि-मुनियों ने अपने स्वराष्ट्र विकास के विषय में सोंच-विचार कर निरन्तर प्रयत्नशील रहे, जिसके कारण अनेक वर्षों तक अपना राष्ट्र एक सूत्र में बधा रहा। हाँ एक बात सत्य रूप से कहा जा सकता है कि विदेशी आक्रान्ताओं के आने से भारतवासी जन समुदाय एकत्रित और संगठित होकर राष्ट्र की सुरक्षा के प्रति सचेत हो गए, जिसके कारण वे हमारी एकता को विखण्डित नहीं कर सके। आधुनिक युग में भी राष्ट्र चेतना के प्रति जन-समुदाय सजग व प्रयत्नशील होकर देश सेवा में लगा हुआ है, जिससे भारत वर्ष अपने को गौरवान्वित महसूस करता है।

मुख्य शब्द- वाङ्मय, राष्ट्रीय चेतना, स्वराष्ट्र, प्रादुर्भूत, आध्यात्मिक, सांस्कृतिक, उच्चादर्शों, मानवीकरणात्मक, कल्याणकारक, सृजनात्मक, राष्ट्रभावना, स्वसाहित्य, विश्वबन्धुत्व, अतिरमणीयता, स्वजन्मभूमि इत्यादि।

संस्कृत वाङ्मय तो राष्ट्रीय चेतना की अक्षय निधि बतलाई गई है। वेद तो राष्ट्रिय चेतना की उद्गम स्थली मानी जाती है। सम्पूर्ण मनुष्य को अपने देश के धर्म, कला-संस्कृति, प्राचीन सभ्यता का ज्ञान भली-भाँति होना आवश्यक माना गया है, जिसे भी इन सभी तथ्यों का ज्ञान अच्छे से हो जाता है, वह अपने राष्ट्र को कल्याणप्रद बना सकता है। अपने स्वदेश को विश्वव्यापी स्तर पर प्रतिष्टितवान् बनाने हेतु सदैव प्रयासरत रहना चाहिए। इसलिए अपने देश के प्रति हमेशा जागरूक रहना ही राष्ट्रीय चेतना कहलाती है। जो व्यक्ति अपने राष्ट्र के प्रति सदैव जागरूक रहता है, उसके अन्त:चित्त में भी राष्ट्रीय चेतना सर्वथा विद्यमान रहा करती है। तभी तो अपने देश के सुरक्षा में लगे सैनिक तन-मन-धन से अपने मातृ-भूमि के प्रति अदम्य साहस के साथ स्वराष्ट्र की सीमा पर डटकर अपने विपक्षी शत्रुओं का सामना करते हैं तथा देश के प्रति अपनी जान न्योछावर करने में पीछे नहीं हटते, वे सदैव देश के लिए मर-मिटने को तत्पर रहते हैं, हमें भी अपने देश-भावना के प्रति सजग व जागरूक रहना चाहिए, अतएव इस प्रकार की उत्पन्न भावना भी राष्ट्र चेतना की ही भावना है।

राष्ट्रीय चेतना का आरम्भ वैदिक काल के समय से ही प्रादुर्भूत हो जाता है। जिसके अन्तर्गत हमारे ऋषि-महर्षियों ने मानव जीवन के अनेक अनसुलझे हुए पहलुओं पर विचार-मन्थन कर अपने जीवन को सुखमय बनाने के लिए केवल

आध्यात्मिक, सांस्कृतिक, धार्मिक, आर्थिक एवं सामाजिक आदि का ही मूल्यांकन नहीं किया अपितु स्वदेश भक्ति एवं स्वदेश प्रेम या स्वराष्ट्र प्रेम की भावना को भी जागृत किया है, क्योंकि यह बात सर्वश्रेष्ठ महर्षियों को भली-भाँति ज्ञात था कि अपने राष्ट्र की सेवा और सुरक्षा से ही अपने राष्ट्र को समृद्ध बनाया जा सकता है अन्यथा नहीं।

राष्ट्रीय चेतना की भावना तभी सम्भव हो सकती है जब हम सभी को अपनी धरती माँ, जन्मभूमि, अपने देशप्रेम और अपने राष्ट्र भूमि के प्रति निष्ठावान् रहें। अपने देश की उन्नति के लिए क्रियावान बनें तथा साथ ही अपने राष्ट्र के सम्मानित अस्तित्व की सुरक्षा के लिए सदैव तत्पर रहते हुए संगठित एवं जागरूक रहें व अन्य को भी जागरूक बनायें। इसके लिए वैदिक संस्कृत एवं लौकिक संस्कृत में प्राप्त जीवन को सुखमय बनाने वाली शिक्षा ही मानवता के लिए एक महत्त्वपूर्ण उपलब्धि सिद्ध हुई है। वैदिक शिक्षा से ही मनुष्य का जीवन नैतिक मूल्यों से युक्त, उच्चादर्शों से संकलित और बहुमुखी प्रतिभा से युक्त सुखमय हुआ है। इसलिए वैदिक शिक्षा वैयक्तिक, सामाजिक, राष्ट्रीय और अन्तार्राष्ट्रीय अभ्युत्थान तथा सभ्यता एवं संस्कृति के लिए परमावश्यक माना गया है। क्योंकि प्राचीन भारतीय मनीषियों ने अपने जीवन काल में इस तथ्य को पूर्णत: अनुभव किया था। इसलिए अपनी संस्कृति के अनुरूप सर्वांगीण विकास और राष्ट्रीय संस्कृति के संरक्षण में समर्थ एक शिक्षा पद्धति का आविर्भाव किया था। इसी के फलस्वरूप ऋषि-महर्षियों ने भारतभूमि के जनमानस में देश-प्रेम किंवा राष्ट्र प्रेम की भावना को जागृत करने के लिए वेदों में अनेक सूक्तों में अपनी मातृभूमि की मुक्तकण्ठ से प्रशंसा की है। इसी प्रकार अपनी जन्मभूमि को माता कहकर सम्बोधित करने की शिक्षा भी वेदों के अन्तर्गत ही प्राप्त होते हैं।

अथर्ववेद के 12वें काण्ड का पहला सूक्त "पृथ्वी सूक्त" है जिनमें जन्मभूमि के प्रति ओजस्वी भाव उद्भूत किए गए हैं। इस सूक्त को "मातृभूमि" का "वैदिक राष्ट्रीय गीत" कहा जाता है। शिक्षा के ध्येय एवम् उद्देश्य पर विचार करते हुए भारतीय ऋषि मुनियों ने समस्त मानव जाति के लिए अन्त: शक्तियों को विकसित कर देना वैदिक शिक्षा का प्रथम और अन्तिम ध्येय स्वीकार किया था। वैदिक ऋषि अपनी मातृभूमि के प्रति सदा ही उच्च-विचार रखता था, जिसे निम्न मन्त्रों में देख सकते हैं-

"माता भूमि: पुत्रोऽहं पृथिव्या:"[1]

&

"नमो मात्रे पृथिव्यै नमो मात्रे पृथिव्या"[2]

वैदिक साहित्य में "राष्ट्र" शब्द का उल्लेख बहुतायत में प्राप्त होता है। राष्ट्र के अभ्युदय के लिए ऋषि / आर्यगण अपना सर्वस्व अर्पित करने को तैयार रहते थे। उनकी प्रबल इच्छा थी कि वरुण राजा तुम्हारे राज्य / राष्ट्र को अविचल करें, वृहस्पति देव राज्य / राष्ट्र को अविचल / स्थिर करें। इन्द्र और अग्नि देव इस राष्ट्र को सुदृढ़ कर इसे अविचल / स्थिर रूप से धारण करें-

ध्रुवं ते राजा वरुणो ध्रुवं देवो बृहस्पति:।
ध्रुवं ते इन्द्रश्चाग्निश्च राष्ट्रं धारायतां ध्रुवम्॥[3]

वैदिक ग्रन्थों में न केवल राष्ट्र की परिकल्पना ही वर्णित है, अपितु उसके आधारभूत तत्त्व, उपयोगिता, महत्ता तथा उसके प्रति जनमानस के दायित्वों एवं कर्तव्यों का भी उपदेश प्राप्त होता है, जो उनकी हार्दिक राष्ट्रीय चेतना का द्योतक स्वरूप है। भारतीय ऋषि महर्षियों ने समग्र भारत वर्ष को राष्ट्र की एक राष्ट्र देवी की भी परिकल्पना की है जो कि अमूर्त राष्ट्र शक्ति या राष्ट्र चेतना का ही मानवीकरणात्मक मूर्त स्वरूपत: है। यही वह शक्ति है, जो राष्ट्र को तेजस्वी स्वरूप बनती है। ऋग्वेद के वागम्भृणी सूक्त में स्पष्टत: कहा गया है कि (वागदेवी की उक्ति) मैं राष्ट्र/राज्य की अधीश्वरी हूँ और धन देने वाली हूँ। मैं ज्ञानवती भी हूँ और यज्ञोपयोगी वस्तुओं में श्रेष्ठ हूँ। देवों ने मुझे राष्ट्र के नाना स्थानों में स्थापित किया हुआ है। इस राज्य/राष्ट्र में मेरा आश्रय-स्थान विशालम है। मैं समस्त प्राणियों में आविष्ट हूँ-

"अहं राष्ट्री संगमनी वसूनां चिकितुषी प्रथमा यज्ञियाताम्।
मा देवा व्यदधु: पुरुत्रा भूरिस्थात्रां भूर्या वेशयन्त:॥"[4]

वेदों में राष्ट्र मङ्गल कामना से सम्बन्धित मन्त्रों का भी उल्लेख प्राप्त होता है, जिसका उल्लेख ऋग्वेद के विश्वदेवा सूक्त में वशिष्ठ मैत्रावरुणि द्वारा यह कामना की गयी है कि हे भग देवता! हमें कल्याणकारक शान्ति प्रदान करें। यह शान्ति

सम्पूर्ण राष्ट्र में मनुष्यों द्वारा प्रशंसित की जाय। बुद्धि एवं धन हमें कल्याणप्रद शान्ति प्रदान करें। श्रेष्ठ और शिष्ट कहे गए कथन सम्पूर्ण राष्ट्र को शान्ति प्रदान करने वाले हों जाय। आर्यमा देव भी इस राष्ट्र के जनमानस को शान्ति प्रदान करने वाले हों वाङ्मय, राष्ट्रीय चेतना, स्वराष्ट्र, प्रादुर्भूत, आध्यात्मिक, सांस्कृतिक, उच्चादर्शों, मानवीकरणात्मक, कल्याणकारक, सृजनात्मक, राष्ट्रभावना, स्वसाहित्य, विश्वबन्धुत्व, अतिरमणीयता, स्वजन्मभूमि इत्यादि -

शं नो भग: शमु न: शंसो अस्तु, शं न: पुरधि: शमु सन्तु राय:।

शं न: सत्यस्य सुयमस्य शंस:, शं नो अर्यमा पुरुजातो अस्तु ॥[5]

वेदों में मात्र राष्ट्र मङ्गल कामना ही नहीं अपितु अन्तर्राष्ट्रीय मङ्गल कामनाओं का भी उल्लेख प्राय: दिखलाई पड़ता है, जिसमें वैदिक महर्षियों ने जनमानस को अपनी बुद्धि, धन, ज्ञान, शौर्य आदि को शान्तिपरक सृजनात्मक कार्यों में नियुक्त करने के लिए केवल राष्ट्रीय ही नहीं अपितु अन्तार्राष्ट्रीय कल्याण का भी उपदेश प्राप्त होता है, जो इस प्रकार है-

शं न सोमो भवतु ब्रह्म शं न: , शं नो ग्रावाण: शमु सन्तु यज्ञा:।

शं न: स्वरुणां मितयो भवन्तु, शं न: प्रस्व: शम्बस्तु वेदि: ॥"[6]

उपनिषद् ग्रन्थों में भी राष्ट्र चेतना का स्वरूप अनेकश: स्थलों परिलक्षित होता है। कठोपनिषद् के अन्तर्गत जीवन कर्तव्य के उत्थान के प्रति सन्देशपूर्ण पंक्तियों से अछूता नहीं रहा जा सकता है, यह पंक्ति जीवन को रमणीय बनाती उपदेशात्मक वचन है, जो इस प्रकार कथोपनिषद् के प्रथम अध्याय के तृतीय बल्ली में अतिरमणीय रूप से कहा गया है, जो इसप्रकार है-

उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्य वरान्निबोधत।

क्षुरस्य धारा निशिता दुरत्यया दुर्गं पथस्तत्कवयो वदन्ति ॥[7]

अर्थात् उठो, जागो, ज्ञानवान् श्रेष्ठ पुरुषों को पाकर उनके सान्निध्य में परम ज्ञान प्राप्त करो। जिस पथ की बात की जा रही है, "वह पथ छुरी की तीक्ष्ण धार के तेज पर चलकर उसे पार करने के समान दुर्गम है" ऐसा विद्वान् ऋषि मुनिगण कहते हैं। इस वचन वाक्य के माध्यम से ऋषियों ने देशवासियों के अन्त:करण में प्राप्त अज्ञानमय अन्धकार को बहिष्कृत कर अन्त:ज्ञान को पूर्णरूप से ज्ञानार्जन द्वारा परिमार्जित व परिष्कृत करने की प्रेरणा दी है। जिससे अपने कर्तव्य बोध का ज्ञान हो सके तथा अपने राष्ट्र के कर्तव्य के प्रति अग्रसर हो सके तथा साथ ही सम्पूर्ण जनमानस के चित्त को स्वराष्ट्र के प्रति उनके चेतना को सोचने की शक्ति उपलब्ध करा सकें। इसी प्रकार एक अन्य उपनिषद् बृहदारण्यकोपनिषद् में भी प्राप्त होता है, जिसमें कहा गया है कि हे प्रभु! मुझे असत् के कुमार्ग से सत्य के सुमार्ग की ओर ले चलो। मुझे अन्धकार (अज्ञान) से प्रकाश (ज्ञान) की ओर ले चलो तथा साथ ही मुझे मृत्यु से अमरता की ओर ले चलो, यह कही गयी उक्ति इस प्रकार से है-

"असतो मा सद् गमय तमसो मा ज्योतिर्गमय मृत्योर्माऽमृतं गमय ॥"[8]

वैदिक ग्रन्थों के तदनन्तर पौराणिक एवं संस्कृत साहित्य के अनेक ग्रन्थों में भी अपने राष्ट्र की रक्षा के लिए तथा साथ ही साथ उन ग्रन्थों में राजसत्ता की रक्षा करने का भाव भी प्राय: दृष्टिगोचर होते हैं। राष्ट्र चेतना की भावना को और भी अत्याधिक प्रभावशाली बनाने में पौराणिक ग्रन्थों का अत्यन्त महत्त्वपूर्ण योगदान भी माना जाता रहा है। पौराणिक संस्कृत साहित्य के अन्तर्गत भारतीय संस्कृति का निरन्तर हो रहे उद्भव ज्ञान के विकास का परिमार्जन सर्वथा होता रहा है। पौराणिक काल में भी अपने राष्ट्र में एकता और देशभक्ति का प्रमाण स्पष्टत: देखा जा सकता है। पौराणिक ग्रन्थों में जहाँ एक तरफ स्वजन्म भूमि की आराधना के रूप में उस समय की राष्ट्रीयता की भावना उत्पन्न होती है; वहीं अन्यत्र इस मातृभूमि की रमणीयता, अतिशोभनीय ऋतुएँ, अति सघन वन, जिसमें अनेक वन-सम्पत्तियाँ, अनेक पवित्र नदियों से सुसज्जित गुणकारी जल एवं हरी-भरी भूमि से युक्त देव भूमि, स्वर्ग भूमि आदि नामों से जानी जा सकती है। इस प्रकार उपरोक्त गुणों से युक्त भूमि पर देवता भी जन्म लेने को सर्वथा लालायित रहते हैं, किन्तु उन्हें वह सद्भाग्य प्राप्त ही नहीं हो पाता है-

गायन्ति देवाकिल गीतकानि धन्यास्तुते भरतभूमि भागे।
स्वर्गापमस्दि मार्ग भवन्ति भूय: पुरुषा: सुरत्वात् ॥[9]

अर्थात् भारतवर्ष की इस मातृभूमि पर जन्म प्राप्त करने वाले व्यक्ति धन्य हैं। उन जन्म लेने वाले महापुरुषों का देवतागण भी हमेशा गुणगान किया करते हैं। यह भारत भूमि ऐसी भूमि है, जहाँ केवल जन्म मिल जाए तो स्वर्ग और मोक्ष दोनों ही सुगमता से प्राप्त हो जाते हैं। यह भारतवर्ष की भूमि समस्त लोक में पुण्यभूमि, स्वर्गभूमि के रूप में स्वीकार की जाती है। क्योंकि कहा भी गया है कि यह भारतवर्ष कि जन्मभूमि स्वर्ग से भी उत्तम कही गयी है- **"जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपिगरीयसी"**। सामान्यतया संस्कृत साहित्य में अनेक स्थानों पर राष्ट्रभावना, देश के प्रति भक्ति, देशप्रेम आदि रूप में विश्वबन्धुत्व की भावना का प्रसार दिखलायी पड़ता है।

लौकिक संस्कृत साहित्य के ग्रन्थों में भी महाकवियों ने राष्ट्र प्रेम के स्वरूपों को उल्लेखित कर भारत वर्ष को समृद्ध बनाने में अपना महत्त्वपूर्ण योगदान सर्वथा दिया है। जिसमें कालिदास, भारवि, माघ, भट्टि, दण्डी, सुबन्धु, आदि समस्त विद्वानों ने अपने संस्कृत साहित्य के ग्रन्थों के माध्यम से राष्ट्रप्रेम सम्बन्धी चेतना को जागृत कराने का प्रयास किया है तथा साथ ही उन्होंने अपने ग्रन्थों के माध्यम से भारतीय संस्कृति, प्राचीन सभ्यता, राष्ट्रचेतना, सामाजिक भावना आदि तत्त्वों का अतिरमणीयता के साथ उल्लेख किया है, जिसके कारण मानव समुदाय पर देश के प्रति राष्ट्रभावना जागृत होती है।

समस्त संस्कृत साहित्य ग्रन्थों के अवलोकन से यह ज्ञात होता है कि इस साहित्य के अन्तर्गत राष्ट्र भावना, स्वदेश भक्ति, स्वदेश प्रेम एवं स्वदेश की उन्नति के स्वरूप में परिलक्षित होती है। हमारे वैदिक ऋषि मुनियों का परम उद्देश्य स्वजन्मभूमि का गौरवगान, उदार भावना तथा विश्व बन्धुत्व की स्वभावना को उजागर कर सम्पूर्ण विश्व में अपनी संस्कृति का प्रसार करना था। संकीर्णता भरी स्वराष्ट्रियता की भावना से ऊपर उठकर अन्ताराष्ट्रियता की भावना को स्वसाहित्य द्वारा इस सम्पूर्ण विश्ववाङ्मय में कल्याण की भावना कायम करना है। यह मात्र वैदिक एवं लौकिक साहित्य ही है जो अपने राष्ट्र की सभ्यता और संस्कृति की आधारशिला को प्रतिष्ठित करने में समस्त साहित्य में सर्वश्रेष्ठ सिद्ध हुई है। इस सर्वश्रेष्ठ भारतीय संस्कृति के माध्यम से ही राष्ट्र भावना के पोषक के रूप में कुछ संकीर्णताओं को भी पूर्णत: हटाना जरूरी है; जैसे- जातिवाद की भावना, सम्प्रदायवाद की भावना, क्षेत्रवाद की भावना, भाई-भतीजा व परिवारवाद आदि। इन उपरोक्त आदि संकीर्णताओं को अपने अन्दर से मिटाने पर ही राष्ट्रीय भावनाओं के साथ ही सांस्कृतिक भावनाओं को अपने अन्दर ग्रहण किया जा सकता है।

1. अथर्ववेद - 12/1/12
2. अथर्ववेद - 9/22
3. ऋग्वेद - 10/173/5
4. ऋग्वेद - 10/125/2
5. ऋग्वेद - 7/35/2
6. ऋग्वेद - 7/35/7
7. कठोपनिषद्, अध्याय 1/3/14
8. विष्णु पुराण 2/3/25